

पारिस्थितिकी दर्शन : दार्शनिक विश्लेषण



अरुण कुमार सिंह

पूर्व शोध छात्र,
दर्शनशास्त्र विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद

सारांश

पारिस्थितिकी दर्शन एक समकालीन संकल्पना है जो पाश्चात्य जगत में 1970 के दशक में उत्पन्न हुई और वर्तमान समय में यह विश्वव्यापी आन्दोलन के रूप में छा गई है। पर्यावरण संकट के नैतिक समाधान के लिए पारिस्थितिकी दर्शन को पल्लवित, पुष्पित एवं पोषित करने का कार्य किया। पारिस्थितिकी संकट उत्पन्न होने पर मानव तथा मानवेतर सृष्टि के अन्तः सम्बन्धों पर पुनर्विचार की आवश्यकता पड़ी। इसी क्रम में सन् 1950 के बाद पर्यावरणीय नीतिशास्त्र के अन्तर्गत गहन पारिस्थितिकी दर्शन का विकास हुआ जो सम्पूर्ण पृथ्वी या सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड केन्द्रित दर्शन था। पारिस्थितिकी दर्शन को पर्यावरण चेतना की मुख्य धारा से जोड़कर सृजनात्मक विकास में उपयोग किया जा सकता है। प्रकृतिवादी शिक्षा का प्रचार अर्थात् शिक्षा के माध्यम से पर्यावरण के प्रति आध्यात्मिक दृष्टिकोण का प्रचार-प्रसार हो ताकि इसे आचरण परक बनाया जा सके। पारिस्थितिकी दर्शन के संश्लेषणात्मक, दृष्टिकोण से करने का प्रयास किया जाना चाहिए, साथ ही पारिस्थितिकी चेतना के प्रति जागरूकता का विकास व उन्नत पर्यावरण के विषय में सामाजिक सोच को बदलने का प्रयास भी किया जाना चाहिए। पारिस्थितिकी दर्शन का विकास जो समग्र दृष्टिकोण करता है, उसमें पर्यावरण के प्रति अनुग्रहशीलता, कृतज्ञता, विनम्रता व एकाग्रता का भाव है, प्रकृति के प्रति-भोग्यता एवं विजेता का भाव नहीं। उक्त दृष्टिकोण को विश्वव्यापीकरण, उदासीकरण व उपभोक्तावादी संस्कृति के आलोक में प्रतिस्थापित करने का प्रयास वांछनीय है। इसके साथ ही पारिस्थितिकी दर्शन के केन्द्रीय मुद्दों को नये सिरे से स्पष्ट करने की आवश्यकता है।

मुख्य शब्द : पारिस्थितिकी दर्शन, पर्यावरण, प्रकृति प्रस्तावना

पारिस्थितिकी दर्शन एक समकालीन संकल्पना है जो पाश्चात्य जगत में 1970 के दशक में उत्पन्न हुई और वर्तमान समय में यह विश्वव्यापी आन्दोलन के रूप में छा गई है। धरती की रक्षा का जो संकल्प (केवल एक ही धरती) 1972 ई0 में स्टाकहोम में लिया था, वह बरास्ते जेनेवा (प्रथम जलवायु सम्मेलन 1976) रियो डि जेनेरो (92) और मान्द्रियल तथा क्योटो होते हुए जोहेन्सवर्ग तक की यात्रा में साढ़े तीन दशक के बाद भी वही का वही अटल है। उक्त संकल्प की विफलता ने पर्यावरण संकट के नैतिक समाधान के लिए पारिस्थितिकी दर्शन को पल्लवित, पुष्पित एवं पोषित करने का कार्य किया। पारिस्थितिकी का सम्बन्ध जीव और उसके पर्यावरण से है। पर्यावरण के अन्तर्गत जैव व अजैव दोनों घटक शामिल होता है। इन दोनों के साथ जीवों की अन्तः क्रियाओं तथा अन्तः सम्बन्धों के सम्पूर्ण अध्ययन को पारिस्थितिकी कहते हैं। मानव अन्य जीवों और अजैविक घटकों के साथ कैसा सम्बन्ध होना चाहिए इसका अध्ययन पारिस्थितिकी दर्शन में किया जाता है। दूसरों शब्दों में इन अन्तः सम्बन्धों एवं अन्तः क्रियाओं का मूल्यात्मक, रचनात्मक, समन्वयात्मक एवं सर्वांगीण दृष्टिकोण से अध्ययन ही पारिस्थितिकी दर्शन है। वस्तुतः दर्शनशास्त्र में इसका अध्ययन नीतिशास्त्र की शाखा अनुप्रयुक्त (Applied ethics) के अन्तर्गत किया जाता है। पर्यावरण दर्शन एक समकालीन दृष्टिकोण है, जिसके दो पक्ष हैं पहला मानवतावादी एवं दूसरा पर्यावरणवादी। यहां मानव-पर्यावरण सम्बन्ध के विवेचन के क्रम में न केवल वैज्ञानिक तथ्य को ध्यान में रखा जाता है अपितु मानव को एक दिशा-निर्देश भी प्रदान किया जाता है। मानव अपने अस्तित्व एवं विकास के लिए अजैविक घटकों के साथ-साथ जैविक घटकों का भी उपयोग करता है, उसके इन क्रिया कलापों से भौतिक पर्यावरण का ढांचागत रूप नकारात्मक ढंग से प्रभावित होता है। मानव के उक्त कृत्यों से उसका स्वयं का भावी अस्तित्व भी सन्देह के घेरे में आ गया है उदाहरण-स्वरूप ग्लोबल वार्मिंग, ओजोन क्षरण, अम्लीय वर्षा, जैव विविधता का ह्रास, ग्रीन हाउस गैसों का अति उत्सर्जन,

भू-क्षरण, कई प्रजातियों का विलुप्त होना, इत्यादि ने मनुष्य के अस्तित्व के समक्ष प्रश्न चिन्ह उत्पन्न करना शुरू कर दिया है।

परिस्थितिकी दर्शन का विश्लेषण एवं अर्थ

18वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात भौतिकवाद संस्कृति का प्रसार हुआ। इसकी वैचारिक परिणति उपयोगितावाद और व्यवहारवाद के रूप में हुई। इसमें प्रकृति को उपयोगी माना गया और अधिकतम सुख के लिए इसके अधिकतर दोहन को सत् माना गया। इसकी परिणति उपभोक्तवादी संस्कृति के आगमन में परिणामस्वरूप इसके नकारात्मक प्रभाव के रूप में पारिस्थितिकी असन्तुलन और पर्यावरण प्रदूषण जैसी समस्याएं उत्पन्न हुईं। इस क्रम में इस विश्वास को बल मिला कि प्राकृतिक संसाधनों का जितना अधिक दोहन किया जायेगा, विकास की गति उतनी ही तेज आयेगी। इस प्रकार प्रकृति विजय की अवधारणा उभर कर सामने आती है। आज मानव व पर्यावरण में प्रभुसत्ता किसकी है? मानव प्रकृति को नियंत्रित एवं परिवर्तित करने में समर्थ है या उसके अनुसार चलने को बाध्य है। उक्त के आलोक में पारिस्थितिकी दर्शन का संश्लेषणात्मक विवेचन आवश्यक प्रतीत होता है। पारिस्थितिकी दर्शन का पारिस्थितिकी विज्ञान, पर्यावरण, भूगोल, प्राणिशास्त्र इत्यादि से गहरा सम्बन्ध है पारिस्थितिकी विज्ञान के बिना पारिस्थितिकी दर्शन रिक्त है और पारिस्थितिकी दर्शन के बिना पारिस्थितिकी विज्ञान अंधा है। पारिस्थितिकी विज्ञान तथ्यात्मक विज्ञान है। इसका सम्बन्ध "क्या" (What) से है। इसके विपरीत पारिस्थितिकी दर्शन आलोचनात्मक विज्ञान और इसका सम्बन्ध "चाहिए" (should) से है। "Ecology" शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग जर्मन प्राणिशास्त्री अर्नस्ट हैकेल (Ernst Haeckel) द्वारा किया गया था। पारिस्थितिकी पर्यावरण के अध्ययन का एक विज्ञान है। हैकेल महोदय के अनुसार पारिस्थितिकी समस्त जीवों के पास-पड़ोस के वाह्य विश्व के साथ सम्बन्धों का विज्ञान है। धार्मिक मान्यताओं का पारिस्थितिकी दर्शन से निकट का सम्बन्ध है। पर्वत-पूजा, नदी-पूजा, प्रकृति-पूजा, टोटम-पूजा, पंच-महाभूत की कल्पना आदि मान्यताएं भारतीय सन्दर्भ में मनुष्य एवं प्राकृतिक अवयवों के बीच निकट सम्बन्ध को बतलाती हैं। आधुनिक युग में विज्ञान, तकनीकी एवं औद्योगिकरण के विकास से मानव के दृष्टिकोण में एक परिणामस्वरूप मानव ने प्रकृति का उन्मुक्त दोहन किया, जिसके कारण पर्यावरणीय असंतुलन के विविध रूप उत्पन्न हुए। इसमें अकाल, अनावृष्टि, अतिवृष्टि, भूमण्डलीय तापन, ओजोन परत में छिद्र तथा एशियन ब्राऊन हेज की समस्या प्रमुख हैं। इन समस्याओं को मानव की स्वेच्छाचारिता ने जन्म दिया है, अतः आज पर्यावरणीय चिन्तन की आवश्यकता बढ़ गयी है। वैचारिक-प्रदूषण से उत्पन्न पर्यावरणीय-संकट के संदर्भ में दो मान्यतायें प्रकाश में आयी, जो स्वयं में नितांत एकांगी तथा अतिवादी हैं। प्रथम-सुख तथा विकास के समक्ष प्रकृति का भयादोहन तथा द्वितीय-मानव तथा प्रकृति के संरक्षण हेतु विकास तथा सुख की पूर्ण तिलांजलि। परन्तु इसका सर्वोत्तम समाधान है "मध्यम मार्ग" अर्थात् सुख की सीमा का निर्धारण एवं मानकों की स्थापना द्वारा संपोषीय विकास की अवधारणा। आवश्यक

ही नहीं बल्कि अनिवार्य हो गया है, कि मात्र शब्द-विग्रह की प्रणाली से ऊपर उठकर हम कर्म प्रणाली की ओर बढ़ें।

परिस्थितिकी दर्शन का स्वरूप एवं विकास

भृहृरि ने ठीक ही कहा है कि "तृष्णा जीर्ण नहीं हुई हम स्वयं जीर्ण हो गये, भोग मुक्त नहीं हुए, हम स्वयं भुक्त हो गये।"¹ स्पष्ट है कि अनियंत्रित भोग भोक्ता को ही भोग्य बना देता है, अतः भोग्य तथा भोक्ता के मध्य सामंजस्य आवश्यक है। परिस्थितिकी संकट उत्पन्न होने पर मानव तथा मानवेतर सृष्टि के अन्तः सम्बन्धों पर पुनर्विचार की आवश्यकता पड़ी। इसी क्रम में सन 1950 के बाद पर्यावरणीय नीतिशास्त्र के अन्तर्गत गहन परिस्थितिकी दर्शन का विकास हुआ जो सम्पूर्ण पृथ्वी या सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड केन्द्रित दर्शन था। गहन परिस्थितिकी में मानव तथा मानवेतर सम्पूर्ण सृष्टि को आन्तरिक मूल्य प्रदान किया गया। नैतिकता को आधार मानकर परिस्थितिकी दर्शन के विकास में तीन क्रम अस्तित्व में आये प्रथम नीतिशास्त्र का विकास भू-नीतिशास्त्र (Land Ethics) के रूप में हुआ, जिसमें पृथ्वी को नैतिक दृष्टि से केन्द्रीय स्थान प्रदान किया गया द्वितीय चरण में सतही परिस्थितिकी दर्शन का विकास हुआ। इसमें चेतन प्राणियों को आंतरिक रूप से मूल्यवान माना गया अर्थात् उन्हें साध्यमूल्य प्रदान किया गया। यहां अचेतन तत्वों को साधन मूल्य प्रदान किया गया तथा उन्हें मात्र इसलिए महत्व प्रदान किया गया क्योंकि वे मनुष्य के उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। इस प्रकार के दृष्टिकोण से ही पर्यावरणीय-असंतुलन की समस्या उत्पन्न हुयी। अतः इसके निवारण हेतु तृतीय चरण में गहन परिस्थितिकी का विकास हुआ। इसमें माना गया कि जिस प्रकार चेतन प्राणी आंतरिक रूप से मूल्यवान हैं, ठीक उसी प्रकार अचेतन तत्वों का भी आंतरिक मूल्य है, अर्थात् उनका भी साध्य मूल्य है। इस प्रकार नैतिक मूल्य की वास्तविक स्थापना गहन-पारिस्थितिकी में ही हो सकी। सतही पारिस्थितिकी व गहन पारिस्थितिकी में यह भेद सर्वप्रथम नार्वे के दार्शनिक आर्ने नायस (Arne Naess) ने किया। सन् 1967 में लिन ह्वाइट जूनियर (Lynn White Jr.) ने "साइन्स" नामक पत्रिका के एक लेख में पारिस्थितिकी संकट के रूप पश्चिमी धर्मशास्त्र को उत्तरदायी माना, जिसके अंतर्गत मनुष्य को तो ईश्वर के प्रतिरूप के रूप में स्थापित किया गया, परन्तु प्रकृति को मानव के अधीन तथा उसके सुख का साधन मात्र स्वीकार किया गया।² किश्चियन विचारधारा में चित-अचित् के द्वैत का प्रारम्भ स्पष्ट दिखायी पड़ता है। "ओल्ड टेस्टामेण्ट" (Old Testameut) में लिखा गया है कि "ईश्वर ने अपने प्रतिबिम्ब से मानव की रचना की है तथा समस्त पृथ्वी पर उसका साम्राज्य स्थापित किया है।"³ स्पिनोजा ने इस एकांगी मत का स्पष्ट विरोध किया तथा "नेचुरा-नेचुरान्स" के आधार पर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि समस्त सृष्टि का निर्माण एक ही ईश्वर से हुआ है, तथा समानान्तरवाद को मान्यता प्रदान किया।⁴ इसी प्रकार लाइबनिज (Libnitz) ने भी चित् तथा अचित् में मात्रात्मक द्वैत को स्वीकार करते हुए कहा कि "अचित् चित् की अल्पविकसित अवस्था मात्र है। दोनों ही समान महत्व रखते हैं।"⁵ आर्ने नायस तथा जार्ज सेशन ने सन 1984 में

एक सम्मिलित शोध पत्र लिखा, जिसमें गहन पारिस्थितिकी नीतिशास्त्र के आधारभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, जो इस प्रकार है⁶ – इस पृथ्वी पर सभी मनुष्य व मानवोत्तर प्राणी स्वयं में मूल्यवान हैं, अर्थात् उनका आंतरिक मूल्य है। मानवोत्तर जगत् का महत्व केवल मानवीय उद्देश्यों की पूर्ति के कारण नहीं, अपितु उनके स्वयं के महत्वपूर्ण होने के कारण है। विविध जैविक तत्वों की समृद्धि और विविधता उनके आंतरिक मूल्य की स्थापना में सहायक होते हैं। उदाहरण स्वरूप जल के अभाव में जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है, अर्थात् जल, जीवन की समृद्धि का द्योतक है। अत्यन्त महत्वपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त इन जैविक तत्वों की समृद्धि और विविधता को हानि पहुंचाने का मनुष्य को कोई अधिकार नहीं है। आस्ट्रेलियन दार्शनिक रिचर्ड सिल्वान तथा बॉन प्लमवुड ने भी चेतन प्राणियों के साथ-साथ प्राकृतिक तत्वों को नैतिकता की परिस्थिति में स्वीकार किया।⁷ “गहन पारिस्थितिकी” नामक पुस्तक में बिल डेवल तथा जार्ज सेशन ने सभी प्राणियों के जीवन को उसी प्रकार मूल्यवान मानने की बात कही, जिस प्रकार मानव जीवन।⁸ इसी प्रकार लॉरेन्स जॉन्सन ने भी अपनी पुस्तक “ए मॉरली डीप वर्ल्ड” में स्पष्ट किया कि “सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र विभिन्न जीवों का संग्रह मात्र नहीं है, अपितु स्वयं में एक समष्टि है।”⁹ प्रारम्भ में मानकीय नीतिशास्त्र का विकास धर्म केन्द्रित-नैतिकता (Theocentric) के रूप में हुआ। इसमें ईश्वर के आदेश का पालन करने वालों को नैतिक माना गया। थामस एक्वीनास तथा सेन्ट आगस्टाइन ने नैतिकता को धर्मशास्त्र पर आधारित माना। इसके बाद नैतिकता को मानव-केन्द्रित माना गया तथा आगे चलकर इस मानव-केन्द्रित नैतिकता (Anthropocentric Morality) पर भौतिकवाद, व्यक्तिवाद तथा उपभोक्तावाद के प्रभावों के कारण यह व्यक्ति-केन्द्रित नैतिकता के रूप में स्थापित हुआ। इसे स्वार्थ-केन्द्रित या अहं-केन्द्रित नैतिकता (Egocentric Morality) कहा गया है। यहीं से पर्यावरणीय प्रदूषण की समस्या का सूत्रपात हो गया। जिसके समाधान हेतु गहन-पारिस्थितिकी प्रयत्नशील है। प्रतिस्पर्धा की होड़ में होने वाले पारमाणविक-प्रयोगों तथा नित्य नये अविष्कारों से बढ़ता हुआ इलेक्ट्रॉनिक कचरा, जल, स्थल तथा वायु को प्रदूषित कर रहा है। जिससे भू-मण्डलीय तापन की समस्या उत्पन्न हो रही है। ग्लेशियर पिघल रहे हैं तथा समुद्र के जलस्तर में वृद्धि हो रही है। 26 दिसम्बर, 2004 को आई सुनामी इसके भयंकर परिणामों की एक झलकी मात्र है। अतः अब आवश्यकता है गहन-पारिस्थितिकी की नीतियों का अनुसरण करने की तथा संपोष्य-विकास की अवधारणा को आत्मसात करने की। भारतीय परम्परा में “माता भूमि: पुत्रोऽहंपृथिव्याः की भावना के साथ प्रकृति से याचना पूर्वक कुछ प्राप्त करने तथा प्रत्युपकार के द्वारा प्रकृति को कुछ प्रदान करने का विधान था। भारतीय दर्शन तत्वमीमांसा “एकतत्त्ववाद” पर आधारित है। इसमें सम्पूर्ण सृष्टि को एक ही परमतत्त्व से उत्पन्न माना गया है, तथा सम्पूर्ण सृष्टि को साध्य मूल्य प्रदान किया गया। आज हम जिस इको-फैंडली लाईफ की बात करते हैं, वह भावना सदियों पहले हमारे वेदों में व्याप्त है। “तैत्तिरीय-उपनिषद्” में ब्रह्म को ही जगत्कारण कहा

गया है तथा सृष्टि का विकास पंचकोषों के आधार पर माना गया है। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय कोषों के आधार पर स्पष्ट किया गया है कि जड़ अर्थात् अन्नमय कोष और परमतत्त्व अर्थात् आनन्दमय कोष का मात्र अवस्थात्मक भेद है, कोई तात्त्विक भेद नहीं। प्राचीन मान्यता के अनुसार – “पेड़ को पुण्यार्जन के लिए मनुष्य शरीर में आते हैं।”

“ऋग्वेद” में भी सम्पूर्ण सृष्टि को साध्य मूल्य प्राप्त था, यथा –

“आपो ही ष्ठा मयोभूवस्ता न ऊर्जे दधातन,
महे रणाय चक्षसे।

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह न,
उशतीरिव मातरः।।¹⁰

मानव-जीवन के तीन आदर्शों “सत्यं, शिवं, सुन्दरम्” के व्यवहारिक अभिव्यक्ति के लिए गहन-पारिस्थितिकी की अवधारणा अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि जब तक हमारी चिंतन पद्धति नहीं बदलेगी, हमारी जीवनशैली में बदलाव नहीं आयेगा। पर्यावरण संकट हमारे अधिकतम उपभोगवादी दृष्टिकोण तथा असीमित इच्छा का अनैतिक परिणाम है। अतः गांधी जी का यह विचार कि – “विकास की सम्भावना उत्पादन बढ़ाने में नहीं, बल्कि आवश्यकताओं को कम करने में है।” – पर्यावरण-संकट के परिप्रेक्ष्य में सर्वथा समीचीन सिद्ध होता है।

उपसंहार

वर्तमान सदी में जो भयानक पारिस्थितिकी असन्तुलन और पर्यावरण संकट है। उसका मूल कारण हमारी भौतिकवादी दृष्टि, प्रयोगवादी मानसिकता, उपभोक्तावादी प्रवृत्ति तथा प्रकृति के सम्बन्ध में एकांगी दृष्टिकोण है। महात्मा गांधी की भाषा में प्रकृति हमारी जरूरतों को पूरा करती है, किसी की लालसा को नहीं (Nature can fulfil every body need but not once greed) लेकिन आदमी की लालसा ही सारी समस्याओं की जड़ है। पर्यावरणीय संकट से लड़ने में श्री सुन्दरलाल बहुगुणा, चण्डी प्रसाद भट्ट, मेघा पाटेकर, अरुन्धति राय, संदीप पाण्डेय आदि के योगदान ने मील का पत्थर स्थापित किया है। मानव का भविष्य विश्व स्तर पर आर्थिक क्रिया-कलापों के नव-निर्माण, उत्पादन पद्धति में परिवर्तन और जीवन पद्धति के मूल्यों में सार्थक परिवर्तन से ही सुरक्षित एवं टिकाऊ बनाया जा सकता है। इन कामों को शीघ्रता से पूरा करने की आवश्यकता है, ताकि बिगड़ते पर्यावरण की गुणवत्ता का संरक्षण एवं परीक्षण हो सके। इस शोध कार्य से सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन अर्थात् वसुधैव-कुटुम्बकम् की भावना का विस्तार होगा, जिससे मानवता के प्रति दायित्व की सुधी लेने में मदद मिलेगी। पारिस्थितिकी दर्शन को पर्यावरण चेतना की मुख्य धारा से जोड़कर सर्जनात्मक विकास में उपयोग किया जा सकता है। प्रकृतिवादी शिक्षा का प्रचार अर्थात् शिक्षा के माध्यम से पर्यावरण के प्रति आध्यात्मिक दृष्टिकोण का प्रचार-प्रसार हो ताकि इसे आचरण परक बनाया जा सके। पारिस्थितिकी दर्शन के संश्लेषणात्मक, दृष्टिकोण से करने का प्रयास किया जाना चाहिए, साथ ही पारिस्थितिकी चेतना के प्रति जागरूकता का विकास व उन्नत पर्यावरण के विषय में सामाजिक सोच को बदलने का प्रयास भी किया जाना चाहिए। पारिस्थितिकी दर्शन

का विकास जो समग्र दृष्टिकोण करता है, उसमें पर्यावरण के प्रति अनुग्रहशीलता, कृतज्ञता, विनम्रता व एकाग्रता का भाव है, प्रकृति के प्रति-भोग्यता एवं विजेता का भाव नहीं। उक्त दृष्टिकोण को विश्वव्यापीकरण, उदारीकरण व उपभोक्तावादी संस्कृति के आलोक में प्रतिस्थापित करने का प्रयास वांछनीय है। इसके साथ ही पारिस्थितिकी दर्शन के केन्द्रीय मुद्दों को नये सिरे से स्पष्ट करने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. "वैराग्यशतक"

2. लिन व्हाइट जूनियर का लेख "साइन्स" पत्रिका में (1967)
3. "ओल्ड टेस्टामेण्ट"
4. "एथिका" (Ethica)
5. "मोनैडोलॉजी"
6. "बेसिक प्रिंसिपल्स ऑफ डीप इकोलॉजी"
7. "इकोफेमिलिज्म"
8. "डीप इकोलॉजी"
9. "ए मॉरली डीप वर्ल्ड"
10. ऋग्वेद, दसवें मण्डल का नौवां सूक्त